भगवाकरण

कट्टरता के मानदंड और नये आचार की अपेक्षाएं

डॉ. नरेश भार्गव

दुनिया के किसी भी समाज की अपेक्षा भारत के बुनियादी लचीले समाज में कट्टरता का प्रश्न बहुत बड़ा है। दुनिया के किसी भी समाज की अपेक्षा भारतीय समाज की विविधता में एकता के तारों का टूट जाना आपदायी है और विनाशक भी। पिछले तीन दशकों में घटनाओं ने कुछ ऐसा किया है कि पुरानी स्थापित मान्यताएं तुड़-मुड़कर समाज की रचना और अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह लगा गई हैं। यह कहा जा रहा है कि कट्टरता के सवाल अब विश्वव्यापी हैं। हर समाज में धर्म और जाति कट्टरता का जैसे युग आ गया है। पर यह सारी कट्टरता बहुल समाजों की नहीं है। विश्वव्यापी कट्टरता के संदर्भों को स्पष्ट देखने के लिए हमें भारत जैसे बहुल समाज और एकल जाति, प्रजाति धर्म के समाजों में अंतर समझना पड़ेगा। भारतीय समाज में कट्टरता का अर्थ है—समाज की मूक एकता पर प्रहार। दूसरे समाजों में कट्टरता का अर्थ है—मान्यताओं तथा रूढ़ियों का रूपांतरण। यूरोप के इतिहास में ऐसे रूपांतरणों के अनेक उदाहरण हैं। ऐसे रूपांतरणों के विरुद्ध वहां आंदोलन भी हुए थे।

डॉ. लोहिया ने अपने लेख 'हिंदू बनाम हिंदू' में भारतीय समाज के कट्टरता तथा उदारवाद के द्वंद्व को उभारा था। उनके अनुसार कट्टरता और उदारवाद का द्वंद्व भारतीय इतिहास का एक हिस्सा रहा है। इस द्वंद्व में कभी कट्टरवाद जीता है और कभी हारा है। लेकिन भारत की तरक्की तभी हुई है जब उदारवाद जीता है। डॉ. लोहिया ने कट्टरवाद तथा उदारवाद के मापन के लिए चार मापन

आधार स्वीकार किए—संपत्ति, जाति, स्त्री और सहिष्णुता। डॉ. लोहिया की दृष्टि में समाज की जकड़न के सारे संदर्भ इन चार आधारों के इर्द गिर्द लिपट जाते हैं। संपत्ति के बंटवारे के प्रश्न पर कट्टरता सामंतवादी तथा पूंजीवादी व्यवस्था का प्रतीक है तो स्त्री के स्वातंत्र्य पर कट्टरता दासता के प्रतीक उत्पन्न करेगी। जाति की कट्टरता सामाजिक शोषण के आधार स्थापित करेगी और गैर-सहिष्णुता सामाजिक एकता के तारों को तोड़ देगी। डॉ. लोहिया ने यह व्याख्या सन् 1950 में की थी। 1950 में भारत के प्रजातांत्रिक स्वातंत्र्य जीवन की शुरुआत थी। तब बंटवारे की सांप्रदायिकता तो थी, पर स्वतंत्र भारत के स्थाई सामाजिक जीवन की महत्वपूर्ण कड़ियों को तोड़ने का कोई प्रयास नहीं था। बंटवारा तब संभवतः एक नियति था। लोहिया ने उसे नकली बंटवारा कहा और अपने लेखों में गांधी जी की असहायता का उल्लेख भी किया जो उनके अनुसार, तत्कालीन भारतीय राजनेताओं की देन थी।

प्रश्न आज की कट्टरता का है। सन् 1917 में वीर सावरकर ने अपनी पुस्तक 'हिंदुत्व' में भारतीय समाज की नई परिभाषा रच डाली थी। यह देश हिंदुओं का है और गैर हिंदुओं को या तो हिंदू धर्म स्वीकार कर लेना चाहिए अथवा उन्हें देश छोड़ देना चाहिए। बाद में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने भी इस विचार को अपना लिया और हिंदू कट्टरवाद के आयामों की रचना कर दी। हिंदू कट्टरवाद का उदय अंग्रेजों को भी पसंद था। आखिर वे फूट की वजह से इस देश में आए थे और हिंदू राजाओं के पारस्परिक विद्वेषों ने ही उनकी कूटनीति को सफल बनाया था। किसी भी कट्टरवाद का उदय अंग्रेजों के शासन करने की नीति के अनुकूल था। यह बात दूसरी थी कि उसी समय जर्मनी में भी एक प्रजातीय कट्टरवाद उभर रहा था। भारत में हिंदू कट्टरवाद और जर्मनी में आर्य कट्टरवाद की प्रेरणाएं क्या थी—यह अभी शोध का विषय है—पर समाजों में एक ही धर्म अथवा प्रजाति के आधिपत्य का सोच दोनों समाजों में एक सा था।

आखिर इस देश के कट्टरवाद का आचरण क्या है? भारत के कट्टरवाद का चरित्र विचित्र है। इसके आचरण फासीवादी हैं और सोच हिंदू। ये मान्यताएं जो लोहिया के चारों आधारों पर उदारवादी दृष्टिकोण नहीं है। फासीवाद को एक सेना चाहिए सो राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ है। फासीवादी प्रचारतंत्र असत्य को सत्य बनाना होता है, सो ऐसा प्रचारतंत्र मौजूद है। फासीवाद की सत्ता के लिए एक राजनीतिक संगठन चाहिए होता है सो एक पार्टी मौजूद है। कोई भी संगठन या पार्टी अपने को पवित्र सिद्ध करने के लिए अपवित्रता के मिथ्या प्रतिमानों को स्थापित करती है—सो कट्टरवादी ताकतें ऐसा कर रही हैं।

आचरण के पीछे किस सोच को स्थापित करना है—यह समझना भी आवश्यक है। यदि सैद्धांतिक आधार पर कह दिया जाए तो इस आचरण के पीछे सोच पूर्व सत्ता प्राप्त वर्ग द्वारा उनके पक्ष में जकड़न पैदा करना है। भारतीय समाज के इतिहास में कम से कम नौ दशक समाज की जकड़न को तोड़ने के दशक रहे हैं। अंग्रेजों की सत्ता की स्थापना के बाद उदारवाद बाहरी सोच भी था और आंतरिक सोच भी। भारतीय संस्कृति की समन्वयवादी परंपरा ने उदारवाद के महत्व को समझ लिया था। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के आंदोलन में बहुत सा सोच ऐसा ही था जो जातियों को तोड़ता था, संपत्ति के बंटवारे के सवाल उठाता था, स्त्रियों की स्वतंत्रता के प्रश्न उठाए गए थे और भारत की विविधता के लिए सहिष्णुता की आवश्यकता पर बल दिया गया था। उदारवाद की यह रचना स्थापित जकड़न और संभावित जकड़न के विरुद्ध थी। उदारवाद की यह दृष्टि न धर्म के तत्संबंधी तर्कों को स्वीकार करती थी और न ही उसे समाज की मान्यताओं की परवाह थी। यह एक परिवर्तनीय दृष्टि थी। वैभव की विकास के लिए धर्म की प्रेरणा यहां नदारद थी।

आज के प्रसंग में बात खुलकर सामने आ गई है। सब जगह तो नहीं पर हिंदी जननी जन्मभूमि में हिंदू कट्टरवाद अब एक आंदोलन है। एक ऐसा आंदोलन जो अन्य धर्मों की उपस्थिति के विरुद्ध है, अन्य धर्मों का भारतीयकरण करना चाहता है और भारतीय प्रजातांत्रिक व्यवस्था के समानांतर स्थापित होना चाहती है। पुनरुत्थानवाद के नाम पर उसके पास अपना इतिहास, अपना विज्ञान और अपना समाजशास्त्र है जिसका न तो कोई वैज्ञानिक आधार है और न ही कोई वैज्ञानिक अस्तित्व है। विकास के नाम पर अयोध्या, काशी और मथुरा, संस्कृति के लिए नई परिभाषाएं और ऐसी शिक्षा जो कट्टरता के प्रति निष्ठा जागृत करती हो।

कट्टरता के मानदंडों की पूर्ति आज का हिंदू आंदोलन कैसे पूरा करता है—यह भी एक प्रश्न है। धीरे धीरे अमरीकी पूंजीवाद तथा उपनिवेशवाद के प्रसार को वैश्वीकरण, आर्थिक सुधार तथा उदारवाद के नाम पर सबसे बड़ा समर्थन इन्हीं शक्तियों ने दिया है। संपत्ति के केंद्रीयकरण के सबसे बड़े समर्थक भी यही हैं। आर्थिक प्रबंधों पर राज्य का अंकुश न रहे इसके प्रयत्न भी इन्हीं के हैं। व्यक्तिगत नियंत्रण तथा इस पर संपत्ति संग्रहण पर नियंत्रण नहीं होना—यह पूंजीवादी प्रवृत्ति है। कट्टरवाद के संपत्ति विश्लेषण वस्तुतः सनातन वर्ग संरचना को बनाए रखने का प्रयास है। उनकी इच्छा संपत्ति के अधिकार को एक वर्ग तक सीमित करना है। इसीलिए समता की अवधारणाएं उनके एजेंडे में नहीं हैं। सच बात तो यह है कि समतामूलक स्वप्न की कोई भी कल्पना उनकी शत्रुभावनाओं के साथ अधिक जुड़ी हुई है।

जाति कट्टरवाद की परंपराओं में से एक है। भारतीय समाज की जकड़न का दोष बहुत कुछ जाति व्यवस्था को दिया जाता है। जाति में कोई भी लोच उन उदार आधारों को स्थापित कर देगी जो अब तक के शक्ति संपन्न वर्गों को चुनौती दे सकें। जाति की धार्मिक व्याख्याएं बड़ी विचित्र हैं। यह प्रश्न सीधा है कि विश्व हिंदू परिषद में शक्ति द्विज लोगों के पास ही क्यों है? धर्म की ऐंठाई के अवसरों को द्विज जातियां खोना नहीं चाहतीं। जाति संरचना की यथास्थिति उनके निहित स्वार्थों को पूरा करती है। इतिहास में ऊंची जातियों के शोषण का विरोध होता रहा है। वर्तमान में ऐसे ही विरोध के कारण दलित आंदोलन खड़ा हो गया है। इसी द्विज नीति के चलते मंदिरों के उद्धार, नये देवताओं की रचना और कर्मकांडों से पूर्ण नये त्योहारों को भी स्थापित कर दिया गया है। यही शासक जातियां उनके द्वारा उभारे आंदोलनों को जन आंदोलन कहने लगे हैं और उनकी तुलना राष्ट्रीय आंदोलन से करने लगे हैं। धर्म की राजनीति अंततः जाति व्यवस्था को मजबूत करेगी और जो कट्टरपंथ का आधार है—यह इस नेतृत्व को मालूम है।

स्त्रियों से संबंधित प्रश्न भी इसी तरह देखे जा सकते हैं। उनके पास कुछ 'शो पीस' हैं जिन्हें उदारवाद के चरित्र का नमूना कहा जाता है। सत्ता की शक्तिवान नारियां (पावर वीमेन) भी व्यवस्था के उन कोनों पर चोट नहीं करना चाहतीं जो उनकी अपनी गैरबराबरी के लिए जिम्मेदार हैं। कट्टरपंथ का पहिला आदर्श पीछे देखू आदर्श है और नारी स्वातंत्र्य की असीमित सीमा उसे स्वीकार्य नहीं। अफगानिस्तान के तालिबानों की तरह ये स्त्रियों के 'ड्रेस कोड' तय कर देना चाहते हैं, उनके सामाजिक आचरण की सीमा तय कर देना चाहते हैं और सामाजिक गैर-बराबरी के इस पक्ष पर प्रहार नहीं करना चाहते। स्त्री पुरुष बराबर हैं—कम से कम सामाजिक अधिकारों के प्रसंग में यह उन्हें स्वीकार नहीं।

सबसे बड़ा प्रश्न सहिष्णुता का है। भारतीय समाज और संस्कृति को सबसे बड़ा खतरा उस आंतरिक सोच से है जो परंपरा के अनुसार बहुल समाज की मान्यताओं के विपरीत है। भारतीय संस्कृति का समन्वयवादी पक्ष इसी सहिष्णुता का परिणाम है। कोई भी विपरीत दृष्टिकोण सामाजिक जीवन के स्वीकृत तानों-बानों को तोड़ने में देर नहीं लगायेगा। 1917 में हिंदुत्व की परिभाषाओं के अनुसार अन्य धर्मों तथा प्रजातियों के विरुद्ध आक्रमण, हिंसा तथा घृणा स्वीकृत सामाजिक व्यवहार के प्रतिमानों में से नहीं है। कट्टरवाद के साथ उभरते मध्यम वर्ग के अपने स्वार्थ हैं। मध्यम वर्ग की विशेषता ही यही है कि वह अपनी संस्कृति से ही उखड़ा हुआ है। राजनीति उसके लिए स्वार्थों का खेल है और कट्टरवाद एक सहारा। पिछले कुछ दशकों में अन्य धर्मों में भी कट्टरवाद उभरा है पर हिंदू कट्टरवाद की चुनौतियां सामाजिक दृष्टि से अधिक प्रबल हैं। हिंदू कट्टरवाद कोई धार्मिक युद्ध ही नहीं है—समाज को पुनरुत्थानवाद के आधार पर पुनर्परिभाषित करने का प्रयास है और सामाजिक बटवारे को स्थिर करने का प्रयत्न। घुटे हुए समाज की असहिष्णुता के अपने ही परिणाम हैं।

कट्टरता के इन मानदंडों ने नई आचरण व्यवस्थाएं उत्पन्न कर दी हैं। ये नई आचरण व्यवस्थाएं उन लोगों के लिए भी हैं जो आंदोलन चला रहे हैं और अपेक्षा के रूप में उन लोगों के लिए भी जो इनसे प्रभावित होंगे। आचरण के इन प्रस्तावों का प्रभाव शिक्षा, संस्कृति तथा समाज सभी पर है। इतिहास को फिर से लिखा जाना, विश्वविद्यालयों में गैर वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित विषयों का प्रारंभ, बिड़ला-अंबानी रपट पर ध्यान से विचार तथा शिक्षा के समान अवसरों की अस्वीकारोक्ति इसी आचरण का हिस्सा है। इतिहास-पुराण तथा मिथकों में अंतर न करना, धर्म के आधार पर

राष्ट्र की नई परिभाषाएं, समूहों की देशभक्ति पर संदेह और इसके लिए संगठित समूहों द्वारा हिंसा को प्रोत्साहन भी इसी आचरण का हिस्सा है। संस्कृति की अपनी परिभाषा तथा व्याख्या और उसके अपने प्रयोग भी इसी आचरण का हिस्सा है। इन आचरणों में उन प्रतीकों का प्रयोग भी सम्मिलित है जो रूढ़िवादी परंपराओं के प्रतीक हैं।

प्रश्न यहीं फिर उठता है—क्या हम तालिबानी सोच की ओर जाना चाहते हैं? एक ऐसा सोच जो मस्जिदों और गिरजाघरों को ठीक उसी प्रकार तोड़ देगा जैसे तालिबानों ने बौद्ध मूर्तियों को ध्वस्त किया। ईरान के खुमैनाई की तरह क्या अब पुरुषों और स्त्रियों के लिए धार्मिक प्रतीकों का धारण आवश्यक होगा? हिंदू कट्टरता की प्रतिक्रिया क्या समाज के स्वीकृत उदारवादी परंपराओं पर प्रहार नहीं होगा? ये सब प्रश्न वर्तमान के प्रश्न हैं जो नये उभर रहे साम्प्रदायिक संघर्ष के प्रश्न भी हैं। प्रश्न यह भी है कि हम पैरूबादशाही से कैसे निपटें—अपनी उदारवादी नीतियों से या कट्टरपंथी नीतियों से। इतिहास की चाहे जितनी पुनर्व्याख्या हो—एक बात सत्य है कि भारतीय प्रगति (विशेष रूप से सामाजिक व आर्थिक) का संबंध उदारवादी सामाजिक नीतियों के साथ जुड़ा रहा है। कट्टरपंथी सोच इतिहास की इस असलियत को कब पहचानेगा—मालूम नहीं।